Anusandhanvallari
Vol 2024, No.1
January 2024
ISSN 2229-3388

तंत्रवाद एवं मिथिला संस्कृति: एक समीक्षा

डॉ कल्पना कुमारी (अतिथि प्राध्यापक)
दिल्ली विश्वविद्यालय
kalpanakumare246@gmail.com

शोध सारांश: मिथिला बिहार राज्य प्रान्त का वह भू-भाग है जो गंगा नदी के उत्तर तथा भोजपुरी क्षेत्र के पूर्व में है तथा नेवारी नेपाल के दक्षिण में तथा बंगला प्रदेश के पश्चिम में है। इसका प्राचीन नाम विदेह था, क्योंकि यहाँ के प्राचीन राजवंश का यही नाम था। साहित्यिक आधार पर मिथिला की धार्मिक स्थिति वैदिक ग्रन्थ, ब्राह्मण ग्रन्थ, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, पुराण, मनुस्मृति, बौद्ध साहित्य आदि से पता चलता है। मिथिला अंचल अपने शुद्धाचार, वैभव, न्यायप्रियता, आध्यात्मिक क्रियाकलाप एवं दयाशीलता के कारण भारतीय सांस्कृतिक लोकजीवन का सदियों से अभिन्न अंग रहा है। शुद्धाचार एवं सात्विकता की खुशबू से महकता है तथा यहां का वातावरण मिथिलावासी के लोकजीवन में प्रयुक्त की जाने वाली वैदिक ऋचाओं, मंत्रों एवं लोकगीतों के स्वरों से गूंजता हैं। इस कारण यह क्षेत्र आध्यात्मिक विचारधाराओं, साहित्यिक एवं दार्शनिक क्रियाकलापों तथा कलात्मक अभिव्यक्तियों का अनेक वर्षों तक केन्द्र रहा है। यहां का लेकजीवन अपने आप में आदर्श हैं। अनेक वर्षों तक इस भू-भाग में कला एवं संस्कृति के निरन्तर विकास होने के कारण इस क्षेत्र का प्रत्येक कण भारतीय संस्कृति का संवाहक बना हुआ है।

बीज शब्द- तन्त्र, आगम, सिद्ध सिद्धान्त पद्धति, शिव और शक्ति, लोक तांत्रिक सिद्धि साधिका, दश महाविद्या, चौसठ योगिनियों, मिथिला।

विस्तृत व्याख्या: प्रत्येक विचार पद्धति अपने अन्दर अपने समय की प्रवृत्तियों को धारण करती है एवं उन्हें प्रकट करती है। इसलिए उसे ठीक-ठीक तभी समझा जा सकता है जब हम उस दृष्टिकोण को पहले ग्रहण कर लें जिससे वह संसार की व्याख्या करती है तथा साथ में उस स्वाभाविक प्रेरणा को भी समझने का प्रयत्न करें जिसके कारण उक्त विचार पद्धति सम्भव हो सकी। मिथिला बिहार राज्य प्रान्त का वह भू-भाग है जो गंगा नदी के उत्तर तथा भोजपुरी क्षेत्र के पूर्व में है तथा नेवारी नेपाल के दक्षिण में तथा बंगला प्रदेश के पश्चिम में है। इसका प्राचीन नाम विदेह था क्योंकि यहाँ के प्राचीन राजवंश का यही नाम था। साहित्यिक आधार पर मिथिला की धार्मिक स्थिति वैदिक ग्रन्थ, ब्राह्मण ग्रन्थ, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, पुराण, मनुस्मृति, बौद्ध साहित्य आदि से पता चलता है। मिथिला अंचल अपने शुद्धाचार, विभव, न्यायप्रियता, आध्यात्मिक क्रियाकलाप एवं दयाशीलता के कारण भारतीय सांस्कृतिक लोकजीवन का सदियों से अभिन्न अंग रहा है। शुद्धाचार एवं सात्विकता की खुशबू से महकता है तथा यहां का वातावरण मिथिलावासी के लोकजीवन में प्रयुक्त की जाने वाली वैदिक ऋचाओं, मंत्रों एवं लोकगीतों के स्वरों से गूंजता हैं। इस कारण यह क्षेत्र आध्यात्मिक विचारधाराओं, साहित्यिक एवं दार्शनिक क्रियाकलापों तथा कलात्मक

अभिव्यक्तियों का अनेक वर्षों तक केन्द्र रहा है। यहां का लेकजीवन अपने आप में आदर्श हैं। अनेक वर्षों तक इस भू-भाग में कला एवं संस्कृति के निरन्तर विकास होने के कारण इस क्षेत्र का प्रत्येक कण भारतीय संस्कृति का संवाहक बना हुआ है।

धर्म साधनाओं का विकास और उसका रूप गठन सामाजिक व्यवस्था से बहुत अधिक प्रभावित होता है तथा इ साधनाओं के परीक्षण और विश्लेषण के लिए तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था का विश्लेषण अनिवार्य होता हैं। अतः प्रत्येक सामाजिक और राजनीतिक जनआन्दोलन समयानुर धर्म साधना का रूप लेकर आता है। प्रत्येक धार्मिक सम्प्रदाय के विकास की प्रगति द्वन्द्वदात्मक होती है। एक तो उसमें परम्परा का सूत्र होता है उसके अनुसार वह चिन्तनधारा अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के विचारों को ग्रहण करती है और अपने को उन्हीं की रूपरेखाओं के अन्तर्गत रखती है। दूसरे वह अपने युग की आवश्यकताओं से प्रभावित होती है तथा लोकपक्ष के प्रभावें को आत्मसात् करती हैं। जो चिन्तधारा जीवित और जागरूक होती है वह लोक पक्ष के प्रभावों को गहनता से आत्मसात् करती है एवं परम्परागत दर्शन को नयी कल्पनाओं, नयी तर्क श्रृंखलाओं से लोकमत के अनुरूप बनाने का प्रयास करती है।

बौद्धोत्तर युग में अनेक मान्यताओं एवं लोकाचार का उल्लेख विभिन्न साहित्यों में वर्णन किया गया है। यहाँ लोकप्रचलित विभिन्न ब्राह्मण मान्तयाएँ हैं, परन्तु अनेक ब्राह्मणेतर मान्यताएँ भी हैं, यह लोकाचार यथा वृक्ष,यक्ष, नाग, डाक, डाकनि, ब्रह्म लोक देवी-देवता, आदि है। इसके अलावा ग्रह, उपचार, तीर्थ, व्रत, शपथ, शकुन-अपशकुन मृतक संस्कार, आदि पर एक दृष्टि डाली जा सकती है। वर्तमान समय में मिथिला के लोग पीपल, बरगद, आम वृक्ष की पूजा करते हैं। जहाँ मिथिला में आम धारणाएँ प्रचलित हैं कि पीपल वृक्ष पर ब्रह्म रहते है। ई. पूं. 300 से 600 ई. के बीच मुख्यतः गुप्तकाल में ब्राह्मण धर्म के पुनरूत्थान का प्रतीक माना जाता है। गुप्तसम्राटों में कुछ वैष्णव, कुछ शैव और कुछ बौद्ध थे। इस समय तक ब्राह्मण धर्म के तीन महत्वपूर्ण पक्ष विकसित हुए। पहला मूर्ति उपासना का केन्द्र बन गये और दूसरा सिद्धान्त पक्ष में यज्ञ का स्थान उपासना ने ले लिया तीसरा सिद्धान्त पक्ष में मानव जीवन के चार लक्ष्य बताये गये - धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। वैदिक देवताओं की प्रतिष्ठा में कमी आयी तथा ब्राह्मण धर्म की दो मुख्य सम्प्रदाय विकसित हुए-वैष्णव तथा शैव। अतः इस समय वैष्णव, शैव और महायान बौद्ध धर्म में भक्ति के सिद्धान्तों पर बल दिया गया। इस काल में वैष्णव धर्म में अवतारवाद का विकास हुआ। ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार विष्णु के 39 अवतार हुए हैं किन्तु इनमें से 10 अवतार प्रमुख माना गया। इस अवतारवाद में आशा की गई थी कि सांसरिक कष्टों से भक्तों को दूर करने के लिए एक अवतार होगा। संभवतः इन अवतारवाद ने समाज में निम्न वर्णों को ज्यादा प्रभावित किया। अवतारवाद ने न केवल विभिन्न प्रमुख धर्मों के अनुयायियों अपितु कबायली एवं जनजातीय लोगों के धार्मिक विश्वासों एवं आस्थाओं को भी वैष्णव पंथ में समाविष्ट करने का प्रयास किया। गुप्तोत्तर काल में ब्राह्मण और बौद्ध धर्म का नई दिशा में विस्तार हुआ। इनमें नवीन सिद्धान्तों एवं धार्मिक क्रियाओं का समावेश हुआ। इन धर्मों के नये रूप समाज के सामने आये। इस समय धार्मिक विचारों के विकास का एक प्रबल कारण तांत्रिक पूजा और उपासना का वेग था जिसने बौद्ध धर्म के मूल रूप को बदल दिया। इन तांत्रिक विचारों ने ब्राह्मण धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों एक-दूसरे को प्रभावित किया। जनसाधरण के धार्मिक जीवन में प्रधानतः दो प्रकार

की भावधारा काम करती दीख पड़ती है। कुछ लोग जहाँ पूर्वप्रचलित परम्पराओं के अनुसार देवताओं की उपासना में विश्वास करते थे और 'देवध्म्मिक' अथवा 'देववतिक' के नाम से अभिहित होते थे, वहीं दूसरे लोग विभिन्न प्रचलित पंथों का अनुसरण करना ही अधिक श्रेयस्कर समझते थे और उनकी विशिष्ट गुरू-परंपराएं भी चला करती थी। देवधम्मिकों की उपासना में भक्ति एवं श्रद्धा का अंश अधिक रहा करता था और वे किसी न किसी प्रकार की विधियों के अनुष्ठान भी करते थे। वे प्रायः व्रत रहते थे और अपनी प्रार्थनाओं के बल पर इष्टदेवों को प्रसन्न कर उनसे लाभान्वित होने में भी विश्वास करते थे। उनके इष्टदेव वस्तुतः विभिन्न दैवीगुणों के मूर्तरूप हुआ करते थे और उनके साथ ये सदा सानिध्य का अनुभव भी करते थे। जो जैसा उपासक होता था, ठीक उसी के अनुकूल उसके इष्टदेव की कल्पना भी हुआ करती थी और तदनुसार ही उसे व्यक्तित्व भी प्रदान किया जाता था। इसी प्रकार इष्टदेव का जो कुछ नाम होता था, उसी के आधार पर उसके उपासक का नाम भी पड़ जाया करता था।

तंत्र शब्द का प्रासंगिक अर्थ एवं अस्तित्व: तन्त्र का सामान्य अर्थ है 'विधि या 'उपाय'। तन्त्र शब्द के अर्थ बहुत विस्तृत है। तन्त्र-परम्परा एक हिन्दू एवं बौद्ध परम्परा तो है ही, जैन धर्म, सिख धर्म, तिब्बत की बोन परम्परा, दाओ-परम्परा तथा जापान में किसी भी व्यवस्थित ग्रन्थ, सिद्धान्त, विधि, उपकरण, तकनीक या कार्यप्रणाली को भी तन्त्र कहते हैं।

तन्त्र का शाब्दिक उद्भव इस प्रकार माना जाता है-''तनोति त्रायति तन्त्र''। जिससे अभिप्राय है-तनना, विस्तार, फैलाव। इस प्रकार इससे त्राण होना तन्त्र है। हिन्दू, बौद्ध तथा जैन दर्शनों में तन्त्र परम्परायें मिलती है। यहॉ पर तन्त्र साधना से अभिप्राय ''गुहय या गूढ़ साधनाओं' से किया जाता रहा है। व्याकरण शास्त्र के अनुसार 'तन्त्र' शब्द 'तन्' धातु से बना है जिसका अर्थ है -विस्तार'। शैव सिद्धान्त के 'आगम' में इसका अर्थ किया गया है, तन्यते विस्तार्यते ज्ञानम् अनेन, इति तन्त्रम् (वह शास्त्र जिसके द्वारा ज्ञान का विस्तार किया जाता है)। तन्त्र की निरूक्ति 'तन' (विस्तार करना) और 'त्रै' (रक्षा करना), इन दोनों धातुओं के योग से सिद्ध होती है। इसका तात्पर्य यह है कि तन्त्र अपने समग्र अर्थ में ज्ञान का विस्तार करने के साथ उस पर आचरण करने वालों का त्राण (रक्षा) भी करता है। तन्त्र-शास्त्र का एक नाम 'आगम शास्त्र' भी है। वाचस्पति मिश्र ने योग भाष्य की तत्ववैशारदी व्याख्या में 'आगम' शब्द का अर्थ करते हुए लिखा है कि जिससे अभ्युदय (लौकिक कल्याण) और निःश्रेयस (मोक्ष) के उपाय बुद्धि में आते हैं, वह 'आगम' कहलाता है। तन्त्र अथवा आगम में व्यवहार पक्ष ही मुख्य है। तन्त्र, क्रियाओं और अनुष्ठान पर बल देता है।

तन्त्र की दृष्टि में शरीर प्रधान निमित है। उसके बिना चेतना के उच्च शिखरों तक पहुँचा ही नहीं जा सकता। इसी कारण से तन्त्र का तात्पर्य 'तन' के माध्यम से आत्मा का 'त्राण' या अपने आपका उदधार भा कहा जाता है। वास्ताव में तन्त्र साधना में शरीर, मन और काय के सूक्ष्मतम स्तरों का समन्वित उपयोग होता है। यह सत्य है कि तन्त्र शरीर को भी उतना ही महत्व देता है जितना कि मन बुदधि और चित को। कार्यों की सिद्धि के लिये तंत्रशास्त्र में वर्णित मंत्रों और उपायों आदि से ही सहायता मिलती है। इस शास्त्र के सिद्धान्त बहुत गुप्त रखे जाते हैं। और इसकी शिक्षा लेने के लिये मनुष्य को पहले दीक्षित होना पड़ना है। प्रायः अनेक प्रकार की सिद्धियों, मारण, उच्चाटन, वशीकरण

आदि के लिये तंत्रोक्त मंत्रों और क्रियाओं का प्रयोग किया जाता है। कर्मकाण्ड और पूजा-उपासना के तरीके सभी धर्मों में अलग-अलग हैं, पर तन्त्र के सम्बन्ध में सभी एकमत हैं। उनमें जप, ध्यान, एकाग्रता का अभ्यास और शरीरगत उर्जा का सघन उपयोग शामिल होता है। यही तन्त्र का प्रतिपाद्य है।

तन्त्रों की विषय वस्तु को मोटे तौर पर निम्न तौर पर बतलाया जा सकता है-ज्ञान, या दर्शन, योग, कर्मकाण्ड, विशिष्ट-साधनायें, पदधतियॉ तथा समाजिक तथा समाजिक आचार-विचार के नियम। तन्त्रोक्त मतानुसार मन्त्रों के द्वारा यन्त्र के माध्यम से भगवान की उपासना की जाती है। इसके विषय में कहा गया है-आगमात् शिववक्त्रात् गतं च गिरिजा मुखम्- तन्त्र के सभी ग्रन्थ शिव और पार्वती के संवाद के अन्तर्गत ही प्रकट हैं। देवी पार्वती प्रश्न करती हैं और शिव उनका उत्तर देते हुए एक विधि का उपदेश करते हैं।

तांत्रिकों के अनुसार तंत्र का अर्थ होता है विस्तार पूर्वक रक्षा करना। इसमें ब्रम्ह की उत्पत्ति से लेकर परिणति तक इस साधन के अंतर्गत आता है। तंत्रसाधना को स्वतंत्र व उन्मुक्त बनाने के लिए यह सब साधना हैं। कठिन साधना के बाद तंत्रसिद्धि प्राप्त कि जा सकता है। यह पूर्णरूप से वैज्ञानिक विधि है। मिथिला में तो घर-घर में इसका सदियों से प्रयोग होता आ रहा है। दूसरे अर्थ में तंत्र का अर्थ एक-दूसरे से जोड़ने से सम्बन्धित है। तन्त्र सिद्धि में योग का अपना महत्तव है। जैसा कि अनादिकाल से इस देश में योगविद्या का प्रचार है। 'श्वेताश्वतर' आदि पूरातन उपनिषदों में इस योगविद्या का उल्लेख है। (दिवेदी हजारी प्रसाद,नाथ संप्रदाय-हजारी प्रसाद दिवेदी ग्रंथमाला-6,नेवेद्य निकेतन वारणसी,1966,पृ.127) समस्त प्राणियों में सर्वाधिक सत्वगुणी मनुष्य है। मनुष्य का शरीर योग सिद्धि का उत्तम साधन है। पतंजलि योगदर्शन में योग से सम्बंधित आठ अंगों का वर्णन किया गया है,..ये हैं-'यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान,समाधि। इसमें:योग-उच्च नैतिक शिष्टाचार का पालन मनसा, वाचा, कर्मणा का पालन।नियम-व्यक्तिगत, समाजगत, चरित्रत अनुशासन का पालन। आसन-शरीर, मन, आत्म शुद्धि का पूर्ण सन्तुलन अर्थात सूखकर शारीरिक स्थिति। प्रणायाम-अन्य अर्थों के अलावा प्राण शक्ति का नियम। प्रत्याहार-मनोनिरोध, इन्द्रिय सुख कामना का उच्छेद, यानि इन्द्रिय संयम । धारणा-किसी एक विषय पर ध्यान केंद्र बिंदु, मन की पूर्ण संयमता, लक्ष्य का केंद्र बिंदु की एकाग्रता। ध्यान-ध्यान उस अवस्था का नाम है, जब व्यक्ति,साधक अपने को ब्रह्मतत्व में लीन कर लें-'सोहम चिन्मात्र मेवेति चिंतन ध्यान मुच्यते'। समाधि मन को आत्मा का साथ एकाकार होना जीवात्मा को ब्रह्म में लीन हो जाना। इसी प्रकार पतंजलि ने पांच नियम बतलाये हैं-शौच संतोष तपः स्वाध्याये श्वरप्राणिध आनानि नियमः। ये है-1.शौच(कायिक, वाचिक, मानसिक शुद्धता),2.संतोष- (यथालाभ सन्तुष्ट रहना,तृष्णा रहित होना), 3.तप-(निश्चित ध्येय के लिए अथक प्रयास, प्रयत्न)।(दिवेदी हजारी प्रसाद,नाथ संप्रदाय-हजारी प्रसाद दिवेदी ग्रंथमाला-6,नेवेद्य निकेतन वारणसी,1966,पृ.134)

ईसा के 600 से 1200 ई. के बीच का काल भारतीय धार्मिक संस्कृति में सहसा तांत्रिक साधनाओं का प्रादुर्भाव होता है और वे इतनी व्यापक हो जाती है कि सभी सम्प्रदाय चाहे वे वैदिक हो या अवैदिक, चाहे वैष्णव हो या शैव, चाहे बौद्ध हो या जैन, सभी तांत्रिक सृष्टि तत्व को प्रश्रय देने लगे। इन साधकों के काल क्रम को सिद्धों का काल

कहा गया है। इस प्रकार हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि इन सिद्धों का मुख्य केन्द्र पूर्वी भारत में था किन्तु इनके साधना स्थल सम्पूर्ण भारत में अधिकांश तंत्रपीठ महाराष्ट्र, उत्तर पश्चिम भारत, बंगाल, आसाम, उड़ीसा, मिथिला मेरंग आदि जगहों पर था। स्मरणीय है कि तंत्रोपासना का उद्भव बंगाल में माना जाता है, किन्तु यह मिथिला में ही प्रबलीकृत हुई -

गौड़े प्रकाशित विद्या मैथिले प्रबलीकृत।

प्रवचित क्यचिन्हाराष्ट्र गुर्जरे प्रलयंगता।।

सिद्ध साधना में कुछ आत्म शुद्धि और संयम जरूरी होता है। इसके लिए चित्त की एकाग्रता एवं शुद्धि भी जरूरी होता जैसा कि भाष्यकार व्यास ने पांच प्रकार के चित्त गिनाए हैं और बताया है कि इस प्रसंग में योग शबद का अर्थ समाधि है। चित्त जब बाह्य विषयों से हटकर एकाकार वृत्ति धारण करता है तो उसे एकाग्र कहते हैं। यह एकाकार वृत्ति भी जब अन्य संस्कारों के साथ साथ लय हो जाती है तो उस चित्त को निरुद्ध चित्त कहते हैं। एकाग्रता के समय चित्त की अवस्था विशुद्ध स्फटिक मणि के समान होती है। स्फटिक के सामने जो वस्तु भी हो वही उसमें प्रतिबिंबित होकर उसे अपने ही आकार का बना देती है। इसी प्रकार एकाग्रता की अवस्था में जो ध्येय वस्तु होती है वह चित्त में प्रतिबिंबित होकर चित्त को अपने ही तरह का बना देती है अर्थात् उस हालत में ध्येय वस्तु के अतिरिक्त किसी अन्य वस्तु की सत्ता चित्त में नहीं रहती। योगशास्त्र में इस प्रकार अवलंबित विषय के रूप में चित्त के अनुरंजित या प्रतिबिंबित होने को 'समापत्ति' कहा जाता है। यह समापत्ति केवल संप्रज्ञात समाधिनिष्ठ चित्त की स्वाभाविक अवस्था या धर्म है। सूत्रकार ने इस अवस्था की प्राप्ति के लिए एक और भी उपाय बताया है। ईश्वर पा्रणिधान या ईश्वर में मन लगाना। साधारण जीवों में जो पांच प्रकार के क्लेश (अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश) होते हैं; जो दो प्रकार के कर्म (धर्म और अधर्म) होते हैं; जो तीन प्रकार के विपाक (जन्म, आयु और भोग) होते हैं और जो पूर्व तक संस्कार होते हैं (आशय) उनसे ईश्वर रहित है। वह सर्वज्ञ है और इसीलिये अन्यान्य पुरुषों से विशेष है। अर्थात् साधारण पुरुष अविद्यादि क्लेशों के अधीन हैं, जन्म-मरण के चक्र में पड़े हुए हैं, पाप-पुण्य (धर्म-अधर्म) के वशवर्ती हैं और पूर्व-संचित वासनाओं के दास हैं। ईश्वर इनसे भिन्न अनन्त ज्ञान का आकर, दोषहीन, क्लेशशून्य, नित्यशुद्ध और नित्यमुक्त हैं। इसी ईश्वर का वाचक शब्द प्रणव या ओंकार है। इसके नाम के जप और नामी (ईश्वर) की चिन्ता करने से साधक का चित्त एकाग्र होता है और उसे आत्मसाक्षात्कार भी प्राप्त होता है। फिर भी उसे विघ्न भी दूर होते हैं।(दिवेदी हजारी प्रसाद,नाथ संप्रदाय-हजारी प्रसाद दिवेदी ग्रंथमाला-6,नेवेद्य निकेतन वारणसी,1966,पृ.132)

इन सबकी प्राप्ति के लिए शास्त्रकार ने पांच प्रकार के नियम बनाए हैं- पांच (पवित्रता) संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान। योग साधन के लिए नाना प्रकार के आसन उपयोगी बताए गए हैं। 'सिद्ध सिद्धान्त पद्धति' में 'ह' का अर्थ सूर्य बतलाया गया है। और 'ठ' का अर्थ चंद्र। सूर्य और चंद्र के येग को ही 'हठयोग' कहते हैं-

हकारः कथितः सूर्यष्ठकारश्चंद्र उच्यते ।

Anusandhanvallari
Vol 2024, No.1
January 2024
ISSN 2229-3388

सूर्याचंद्रमसोर्योणात् हठयोगो निगद्यते ।।

इस श्लोक को कही हुई बातों को व्याख्या नाना भावसे हो सकती है। ब्रह्मा-नंद के मत से 'सूर्य' से तात्पर्य प्राणवायु का है और चंद्र से अपान वायु का। इन दोनों का योग अर्थात् प्राणायाम से वायु का निरोध करना ही हठयोग है। दूसरी व्याख्या यह है कि सूर्य इड़ा नाड़ी को कहते है। और चंद्र पिंगला को (हठ. 3.15)। इस लिये इड़ा और पिंगला नाड़ियों को रोककर सुषुम्णा मार्ग से प्राण वायु के संचारित करने को भी हठयोग कहते हैं। इस हठयोग को 'हठसिद्धिदेने वाला कहा गया है। (दिवेदी हजारी प्रसाद,नाथ संप्रदाय-हजारी प्रसाद दिवेदी ग्रंथमाला-6,नेवेद्य निकेतन वारणसी,1966,पृ.137)। ब्रह्मचर्य और प्राणायाम के द्वारा इस बिंदु को स्थिर और ऊर्ध्वमुख किया जा सकता है। परन्तु इसके लिये आवश्यक है कि नाड़ियों को शुद्ध किया जाय। नाड़ीशुद्धि होने के बाद प्राणादि वायुओं का शमन सहज हो जाता है। नाना-प्रकार के आसनों और प्राणायामों से सुषुम्ना मार्ग खुल जाता है। नाड़ियों को प्रधानतः दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। दक्षिणांग में व्याप्त नाड़ियां सूर्य का अंग हैं और बाम भाग वाली चंद्रमा के अंर्ग इन दोनों के बीच सुषुम्ना है। इस प्रकार हठयोगों प्राणवायु का निरोध करके कुण्डलिनी को उद्बुद्ध करता है। उद्बुद्ध कुण्डली क्रमशः षट्चक्रों को भेद करती हुई सातवें अंतिम चक्र सहस्रारं में शिव से मिलती है। गुरुवाक्य जान लेने पर सुषुम्ना मार्ग में यही मंत्र उल्टी दिशा में उच्चरित हो 'सोहं' हो जाता है और इस प्रकार योगी 'वह' (सः) के साथ 'मै। (अहम्) का अभेद अनुभव करने लगता है। इसी मंत्रयोग के सिद्ध होने पर हठयोग के प्रति विश्वास पैदा होता है। इस हठयोग में हकार सूर्य का वाचक है और सकार चन्द्रमा का। इन दोनों का योग ही हठयोग है। हठयोग से जड़िमा नष्ट होती है और आत्मा परमात्मा का अभेद सिद्ध होता है। इन विविध ध्यानों का आसन, प्राणायाम और मुद्रा के अभ्यास से सिद्ध किया जाता है। मुद्रा का उद्देश्य शक्ति को ऊपर की ओर चलाना है। शैव और शाक्त आगमों में ब्रह्म को (या शिव की) इस इच्छा को 'नाद' कहते हैं। भाषा के अक्षरों के अर्थों में कई स्तर होते हैं। सबसे उपर के स्तर पर भाषा का लौकिक अर्थ है, उससे उपर गहरे अर्थों में भाषा के आध्यात्मिक एवं देवता परक अर्थ निकलते हैं। यहाँ तक कि स्वतः शब्द ही ब्रह्म हैं या अक्षर विभिन्न देवताओं के स्वरूप मात्रा हैं। आरंभिक समष्टिव्यापिनी वाक की 'श्रीमद्भगवद्गीता में एकाक्षर ब्रह्म कहा है। एक ही कम्पन या स्पंद के रूप को स्पष्ट करने के लिए इसे 'एकाक्षर' कहा है। योगसूत्र में प्रणव अर्थात् ओंकार को ईश्वर का वाचक कहा गया है। वे भाव के द्वारा ही ग्रहण किये जाते है जे मनोमय हैं। ओंकार उनका नाम स्मरण किया जाता है क्योंकि उसके द्वारा आह्वान किये जोने पर वे प्रसन्न होते हैं। मनुष्य अपने कानों से जो शब्द सुनता है वह स्थूल है। केवल बौद्धिक दृष्टि से हम उस प्रथम सूक्ष्म स्पन्द की बात सोच सकते हैं। इच्छा ही नाद है। इच्छा के साथ क्रिया लगी है। क्रिया को ही बिन्दु कहते हैं। सच्चिदानन्द विभव शिव सकल (कला सहित, सगुण) परमात्मा के रूप में प्रकट हुए और उन्हीं की शक्ति से नाद उत्पन्न हुआ और नाद से बिन्दु की उत्पत्ति हुई -सकल परमात्मा की इस शक्ति को ज्ञानशक्ति कहते हैं। नाद इच्छाशक्ति है, विन्दु क्रियाशक्ति है। यही ज्ञान-इच्छा और क्रिया का त्रिकोण है। नाद या इच्छाशक्ति गति है, विन्दु या क्रियाशक्ति स्थिति। गति और स्थिति मिलकर रूप या आकार प्रकट करते हैं। नाद ही गति है, बिन्दु ही स्थिति है। गति और स्थिति का विलास ही जगत है। सो गति रूप नाद सृष्टि के लिये आवश्यक है, उसके साथ बिन्दु भी। मकार अनुस्वार या चन्द्रबिन्दु रूप में

ही तो बदलता है। इसलिए ॐ कार शब्द विश्व का आरंभ माना जाता है। यह रूप सगुणब्रह्म का है। इसलिये केवल वह प्रणव है। आगामें में ॐ कार को सूक्ष्मवेद कहा गया है। आरंभिक समष्टिव्यापिनी वाक की 'श्रीमद्भगवद्गीता में एकाक्षर ब्रह्म कहा है। एक ही कम्पन या स्पंद के रूप को स्पष्ट करने के लिए इसे 'एकाक्षर' कहा है। आगमों में ज्ञानशक्ति, इच्छाशक्ति और क्रियाशक्ति को ही बीज, नाद, विन्दु, कहा गया है। आधिदैविक भाषा में कहें तो ये ही ब्रह्मा, विष्णु और शिव है। इस त्रिविधा-विभाजित शक्तित्रय के अधिष्ठाता् देवता ही ब्रह्मा, विष्णु और शिव है। इस परमशिव को जब सृष्टि करने की इच्छा होती है तो इच्छायुक्त होने के कारण उन्हें 'सगुण' शिव कहा जाता है। यह इच्छा ही शक्ति है। अब इस अवस्था में परमशिव से एक ही साथ दो तत्व उत्पन्न होते हैं। शिव और शक्ति। वस्तुतः इन दोनों में कोई भेद नहीं है। यह शक्ति पांच अवस्थाओं से गुजरती हुई स्फूरित होती है। ये अवस्थाएं क्रमशः परा, अपरा, सूक्ष्मा और कुण्डली कही जाती है। इन अवस्थाओं में शिव भी क्रमशः परम, शून्य, निरंजन और परमात्मा के नाम से प्रसिद्ध होते हैं।(दिवेदी हजारी प्रसाद,नाथ संप्रदाय-हजारी प्रसाद दिवेदी ग्रंथमाला-6,नेवेद्य निकेतन वारणसी,1966,पृ.163)। तत्कालीन लोकमानस में ब्राह्मणों के उच्चवर्गीय विद्वानों ने ज्योतिष, भाषा विज्ञान, गणित औषधि - विज्ञान, आदि शास्त्रों का अभूतपूर्व उन्नति की। उसके स्थान पर निम्नवर्ग की जनता में टोना-टोटका, भूत-प्रेत, अंध्विश्वास, रहस्यमयी परम्परा, आदि का बाहुल्य था जो उसके आदिम प्रवृत्तियों का द्योतक था। जब लोकपक्ष ने अपने को तत्कालीन धर्म साधनाओं में प्रतिष्ठित किया तो वह असंस्कृति अंश भी उभर कर आया और ज्योतिष विज्ञान की राशियां और नक्षत्र, गणित, विज्ञान के रेखाचित्र, यंत्र, आदि औषधि विज्ञान की रस और रसायण की कल्पनाएं भी उन रहस्यमयी साधनों में तांत्रिक अनुष्ठानों के रूप में समा गयी और बाद में उन सभी विज्ञानों का विकास इन्हीं सीमाओं में होता रहा और उनका शुद्ध भौतिकरूप या वैज्ञानिक रूप गौण होता रहा। आचार्य क्षितिमोहन सेन का मत है कि उस समय इतनी रूढ़ जाति व्यवस्था नहीं थी बहुत सी जातियों का पद उठता-गिरता रहता था बहुत से ब्राह्मण ऐसे भी थे जो अपने को ब्राह्मण कहते थे किन्तु कुछ श्रेष्ठ ब्राह्मण उसे ब्राह्मण नहीं स्वीकार करते। ऐसे ब्राह्मण को अक्सर अनार्यों का ब्राह्मण कहा गया है। ऐसे ही ब्राह्मण बाद में तांत्रिक तथा तथाकथित वेद वाह्य साधनों और अनुष्ठानों को संरक्षण प्रदान करते रहे। तंत्रों में अक्सर ऐसे ब्राह्मणों के विषय में मनोरंजक बातें मिलती हैं। पहले वे लोग 'वामाचार' में कम भाग लेते थे, इस सीमा तक वे निम्नवर्ग से अपने को अलग रखना चाहते थे। इसी कारण मंत्रों की दो पद्धतियाँ स्वीकार की गई थी, दक्षिण वाम जिनमें दक्षिण सात्विकी पद्धति थी और ब्राह्मणों द्वारा ग्रहणीय थी। बाद में यह भेद हटा दिया गया और यह सिद्धान्त प्रचलित हुआ कि भैरवी चक्र में प्रवृत्त होते समय कोई ब्राह्मण नहीं रह जाता। निवृत्त होने के बाद पुनः वर्ण की सार्थकता हो जाती है। उनका जीवन, उनकी चिन्तधरा अनुदार ब्राह्मण कर्मकाण्ड से अधिक मानवीय स्वस्थ्य और सहज लगती थी। यह स्पष्ट भी है कि सरहपा आदि जैसे ब्राह्मण उसी प्रकार के लोक जीवन के साथ चलने वाले विद्रोही ब्राह्मण थे। इसके अतिरिक्त भी बहुत से सिद्ध या तो इन जातियों में उत्पन्न हुए या नहीं तो निम्न वर्गों का पेशा और जीवन अपना लिया।

शक्ति पूजा भारत में प्राचीन काल से चली आ रही है किन्तु पूर्व मध्यकाल में यह ज्यादा व्यापक हो गई। शक्ति पूजा के मूल में यह दार्शनिक विचार है कि ईश्वर अपनी शक्ति की सहायता से ही सृष्टि धारण एवं संहार करती है। परिणाम

यह हुआ कि विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों में शक्ति परमदेवता के अर्द्धांगिनी के रूप में संसार में प्रचलित हो गई। जिसके कारण धार्मिक भावना सपत्निक अनुग्रहशील देवताओं की ओर प्रवृत्त हुई। मिथिला में भी इसका प्रभाव पड़ा। फलतः पंचदेवोपासना में शक्ति का उच्च स्थान है। इसी समय तंत्र-मंत्र का विकास हुआ। जिसके कारण लोगों के मन में यह विचार आया कि देवी शक्ति मंत्र की जननी एवं शब्द ज्ञान की भंडार हैं। यह ज्ञान चेतना और शून्य में भी शून्य की साक्षी है। वैसे तो भावनात्मक रूप से भक्ति एवं सिद्धि के लिये उपासना जरूरी होता है। कुछ दार्शनिक का मत है कि शक्ति की उपासना के लिये दूर भटकने की जरूरत नहीं है। प्रत्येक पिण्ड में, प्रत्येक अणु-परमाणु में वह शक्ति विद्यमान है। जगत् का प्रत्येक प्राणी उसे इच्छा, क्रिया और ज्ञान रूप में अनुभव करता है। ब्रह्माण्ड के रग रग में प्रव्याप्त यह शक्ति मानव देह में कुण्डलिनी रूप में स्थित है।

मध्यकाल में शक्ति के दो रूपों का विकास हुआ - सौम्य और उग्र। सौम्य रूप में शिव के शक्ति का रूप में उमा गौरी, पार्वती, अद्धनारिश्वर, है तथा उग्र रूप में काली, भैरवी, रक्तदंतिका, चंडिका, छिन्नमस्तिका आदि है। देश काल एवं परम्परा से शक्ति के विभिन्न रूप हैं। मिथिला में शक्ति रूप के रूप में पूजित देवीयों की दो धाराएँ हैं- एक आदिशक्ति ब्रह्मस्वरूपणी सनातन धर्म से सम्बन्धित। दूसरा मिथिलांचल की लोक परम्परा अनुसार। इनमें सात माताओं सप्तमातृका, सात बहने,सप्त भगिनी,अष्टमातृका एवं दसमहाविद्या,षोडस मातृका,चौबीस मातृका,इक्यावन शक्तिपीठ,चौंसठ योगिनी आदि रूपों में विस्तारित किया गया। जबकि सभी का मूल किसी न किसी रूप में आदि शक्ति में ही निहित है। प्रथमतः एक आदि शक्ति का विस्तार महाकाली, महालक्ष्मी, एवं महासरस्वती के रूप में हुआ था जो मूलतः सृजन, पोषण एवं संहार की अिध्ष्ठाता त्रिदेवों की ही महाशक्तियाँ है। पूर्व मध्यकाल में जब तांत्रिक शक्ति का विकास हुआ तो माना गया कि सृष्टि संदर्भ में काम करने वाला धर्म शक्ति एक तांत्रिक शक्ति है जो गुह्य होते हुए भी लोक जीवन के आचार, विचार, उपचार, में प्रत्यक्ष है तथा ये अर्थ और काम भोग से सम्बद्ध या असम्बद्ध होकर लोक को मुक्ति की ओर प्रेरित कराती है। इस धर्म के अधिष्ठाता के रूप में धर्मराज ब्रह्म की भी परिकल्पना की गयी है। मिथिलांचल में धर्मराज ब्रह्म बाबा,धरम ठाकुर, बाबा डीहवार, ठाकुर बाबा आदि की पूजा की जाती है।

शास्त्राय संदर्भ में आदि शक्ति के रूप में दस महाविद्या प्रमुख हैं। शाक्तदर्शन में दस महाविद्या इस प्रकार है-काली, तारा, षोडसी, भुवनेश्वी, भैरवी, छिन्नमस्ति, सुन्दरी कमला, वगलामुखी, घुमावती, मातंगी आदि । दश महाविद्या में काली का स्थान प्रथम है। काली का दूसरा पर्यायवाची - श्यामा कहा जाता है। दश महाविद्या में तारा का स्थान दूसरा है। तारा अपने भक्त को दुख से त्राण निवारण करती है। इन्हें नील सरस्वती भी कहा जाता है। नीलतंत्र में तारा का आठ नाम दिया गया है - तारा, उग्रतारा, महोग्रा तारा, वज्रतारा, नील तारा, सरस्वती, कामेश्वरी, भद्रकाली। तारा देवी की मूर्तियाँ विभिन्न प्रकार की मिली है - जैसे - बज्रतारा, मणितारा, अष्टतारा, महोग्रा, नीलसुन्दरी, हंसतारा। शक्तिसंगम तंत्र के अनुसार काली, तारा, त्रिपुरसुन्दरी एवं छिन्नमस्ता एक ही भगवती की विभिन्न रूप है। मिथिला में तारा की पूजा 'चीनाचार तंत्र ' के माध्यम से होती है। जिस विधि से तारा की पूजा होती हैं वह चीनाचार तंत्र विधि है जिसे ब्राह्मण धर्म में शामिल कर लिया गया। महाचीनाचार कर्म में दो विधि है-पहला सकला दूसरा निष्कला ।

इनमें पहला बौद्ध उपासकों ने अपनाया दूसरा ब्राह्मणों ने अपनाया। बाद में चलकर मैथिल ब्राह्मण धर्म में भी इसको अपनाया। 'रूद्रमाला' में तारातंत्र के बारे में बताया गया है कि यह हिमालय की तराई क्षेत्र से मुनि साधकों द्वारा भारत लाया गया। दशमहाविद्या में षोडशी का तीसरा स्थान है। इनका अन्य नामों में श्रीविद्या, सुन्दरी, त्रिपुरसुन्दरी, राजराजेश्वरी, ललिता, कला, सुभगा, कामेश्वरी आदि है। इसमें त्रिपुरीसुन्दरी महाविद्या का उपासक इनको चन्द्रमा की सोलह कला से युक्त, श्रीविद्या, नित्यज्योर्मियी सचिदानन्दस्वरूप में करता है। श्रीविद्या के रूप में इनकी पूजा घर-घर में होती है।

उपरोक्त दशमहाविद्या के बारे में महानिर्वाण तंत्र में कहा गया है कि - ''त्वं काली तारिणी दूर्गा-षोडशी भुवनेश्वरी। घुमावती त्वं वंगला भैरवी -छिन्नमस्तका। त्वमन्नपूर्णा वाग्देवी त्वं देवी कमलासना''। अर्थात यह महाविद्या सुक्ष्मतिसुक्ष्म, विश्व से भिन्न, निराकार आद्या, पराशक्ति हैं। यह देवी काली, तारा की साकार रूप है। मिथिलांचल में उग्रतारा वनग्राम कात्यायनी बदला घाट, कंकाली सिमरौगढ़ चण्डी वरांटपुर चामुण्डा कटरा गढ़ आदि के पूजावशेषों से यह प्रमाणित हो चुका है कि मध्यकालीन मिथिला में तांत्रिक उपासना की प्रधानता थी।

इस प्रकार दश महाविद्या में एक आद्या शक्ति सभी में एकत्वभाव महाशक्ति स्वरूप हैं। समग्र रूप में दश महाविद्या के बारे में कहा जाता है कि ये सर्वसिद्धि दायिनी हैं यथा - एता दश महाविद्या सिद्धिविद्याः प्रकीर्तिताः। धमार्थकामदा नित्यं चतुर्वर्गफलप्रदा। मिथिला में दरभंगा के प्रसिद्धि श्यामा माई मंदिर सहित कई मंदिर में उपासना पूर्ण तांत्रिक विविध से हाती है। मिथिला में लगभग सभी पर्व मै शक्ति की आराधना का मत है कि इसमें जैसे कि दिपावली, दुर्गा पूजा आदि में तन्त्र विधि से पूजा का विशेष महात्व है। जानकारों के मुताविक दरभंगा राज परिवार के कंकाली मंदिर,श्यामा माय मंदिर,मधुबनी के काली मंदिर, सहरसा के तारा मंदिर,चनौर ड्योढ़ी के काली मंदिर,उच्चैठ के चंडी मंदिर, भडारिसम-मकरंदा के वाणेश्वरी भगवती मंदिर,नवादा के भगवती,उजान गांव का छिन्नमस्तिका मंदिर, आदि प्रसिद्ध देवी मंदिरों में तांत्रिक विधि से मां की आराधना होती है। प्रारमिक समय से ही मिथिला तन्त्र पर आधारित शक्ति उपासना का केंद्र रहा है। विभिन्न प्रान्तों में ये सिद्ध फैले हुए थे। ये सिद्ध पुरुष घुम्मकड़ थे लेकिन इनका साधना अपना स्थल भी था। इन 84 सिद्धों की सूची 'वर्णरत्नाकर' में वर्णित हैं। वर्णरत्नाकर तालपत्र पर एक हस्तलिखित ग्रन्थ है। जो मिथिला के प्रसिद्ध विद्वान ज्योतिश्वर ठाकुर ने लिखा था। यह ग्रन्थ एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल' में सुरक्षित है। इसके लेखक कवि शेखराचार्य ज्योतिश्वर ठाकुर मिथिला के राजा हरिसिंहदेव 1300-1321 ई के दरबार में थे। इन ग्रन्थों के विभिन्न कल्लोलो में नगर वर्णना, नायिका वर्णना, जाति वर्णना आदि का विस्तृत वर्णन हैं। उसी में 84 सिद्धों का वर्णना भी दी गई है यद्यपि इनमें केवल 76 सिद्धों के ही नाम दिया गया है। विभिन्न लेखकों द्वारा सिद्ध पुरुषों के नामों का मिश्रण भी कर दिया गया है। इन नामों में कुछ सिद्ध ऐसे व्यक्तित्व के थे जिनका जनता पर बहुत प्रभाव था। संभवतः उस समय आदरवश भिन्न-भिन्न वर्गों के लोग अपनी-अपनी परम्परा अनुसार इन सिद्धों को अपना लिया हो।

मिथिला के तांत्रिक साधकां में आत्मजयी को वीर की संज्ञा दी गई है। वीरत्व की साधना के लिए शक्ति की सानिध्य आवश्यक है। इस प्रकार चौंसठ योगिनियों में प्रतिष्ठित मालिनी, भगवती की संतति एवं उपासिका माने जाने वाली सम्प्रदाय दीक्षित मालिनों के चरितांश प्रचलित मैथिली गति, गाथाओं एवं मंत्रों में बड़ी संख्या में उपलब्ध है। मिथिलाचंल की वीराचार क्रम में भैरव कमला के साथ एवं गोरैया बन्नी देवी के साथ तथा कोयला वीर कोसी के साथ है। जैसे एक लोक में गायन है - 'आगु-आगु कोयला वीर धंसना खसावत, पाछू-पाछू कोसिका उपमल जाय'। चण्डी के साथ जुड़े बावन वीरों में लाहुरा, बुल्ला, कर्मन, अगह्न, गॉवरिया, हंड़िया, कोयला, गोरैया आदि की पूजा मिथिलाचंल के राजपूत, निषाद मूलक जातियों - उपजातियों, तथा निम्न जातियों में दुसाध्, चमार, धनुक, केयोट, आदि में पूजा जाता है। इस प्रकार वीरोपासना का मूल यक्षोपासना में निहित है। हंड़िया यक्ष को गोरैया वीर कहा जाता है। ये वीर ग्राम यक्षों की परम्परा में लोकपूजित है।

मिथिला का यह सिद्ध पुरुष, कारिख पजियार, राजा सलहेस, सोखा, दुलरा दयाल, दीनाभद्री, मलंग, आदि निम्न जातिया देवस्वरूप सिद्ध पुरुष है। जिनके साथ योगिनी रूप में दूर्गा, मालिन सम्प्रदाय से कुसमा, दौना, रेवती, तरेगणी तथा अन्य में चम्पा डगरैन, नयना योगिन या जागिने, नयमा, पनमा, तामोलिन, बहुरा ठाकुराईन, पुनरी दुसाधिन आदि हैं। चंदू सौदागर का डीह खगड़िया जिला मुख्यालय से 16 कि.मी. पर महेश खूंट में हैं, यहाँ से राष्ट्रीय राजमार्ग पर 8 कि.मी. दूर, पसराहा नारायणपुर मुख्य सड़क से 6कि.मी. उत्तर एक निर्जन जगह में यह डीह हैं। चंदू सौदागर डीह पर एक वृताकार उंचा टीला है। लोक कथाओं के अनुसार यह एक तांत्रिक शक्ति विहुला के कथा पर आधरित हैं। यह कहानी लोक जनश्रुति कथा के तांत्रिक पक्ष को दर्शाता है। ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण से यह स्थान अनुसंधानात्मक है। चंदू सौदागर का यह डीह तांत्रिक स्थल की संभावना व्यक्त की जा सकती है जो ऐतिहासिक अनुशीलन के बाद ही स्पष्ट हो पायेगा। मिथिलाचंल की मध्यकालिन डाइनों में बखरी सलौना वेगुसराय जिला की 'बहुरा ठाकुराइन' तथा शिशु जन्म से सम्बन्धित चमार जातियों की जातीय गृह देवी 'चम्पा डगरैन' तथा धामियों में 'गनौर ' गुआर ग्वाला प्रमुख है। लोक अनुश्रुति में कहा जाता है कि बखरी सलैना की बकरी भी डाइन होती थी। ये डाकिनी स्त्रीयाँ तांत्रिक अनुष्ठानों में सिद्ध होती थी एवं गुह्य श्मशानों आदि के अनुष्ठानों के कारण जनसाधरण इसे भय की दृष्टि से देखता था। इनमें मारण, मोहन - सम्मोहन, उच्चाटन आदि के कारण समाज में गर्हित मानी जाती थी। लोक तांत्रिक सिद्धि साधिका दौना, कुसमा आदि मालिनों का उद्भव मिथिला- मोरंग में उस समय होता है जब उस भू-भाग में तांत्रिक साधना उत्कर्ष पर थी। ये सिद्धस्त मालिने शुक-कपोत के द्वारा संवाद प्रेषण, इच्छित रूप परिवर्तन, काम्यपुरुष एवं पशु-पक्षी को वशीभूत कर अपने सिद्ध तांत्रिक क्रियाओं में निपूर्ण होती थी। यह सच है कि योगसाधना में सिद्ध साधिका का श्री सौन्दर्य एवं वाणी उत्पन्न मनमोहक हो जाती है। अतः इसके प्रति देवकार्षण और लोकार्षण स्वाभाविक है। मिथिला में भगवती की आराधना तांत्रिक योगिनी तथा मालिनी के रूप में होती रही है। तंत्र साधना में योगिनी और मालिनी की भूमिका महत्वपूर्ण मानी गयी है, क्योंकि तांत्रिक प्रक्रियाओं में वे मार्गदर्शन का कार्य करती है। चौसठ योगिनियों में मालिनी भी प्रतिष्ठित है- मिथिला की दीक्षित मालिनों सम्प्रदाय का सम्बन्ध उन सिद्ध साधिकाओं से है जो भगवती की लोकोपासिका होती है। इस प्रकार मिथिला की लोकपरम्परा वर्तमान समय में

प्रासंगिकतावश जीवित है। इस प्रकार मिथिलांचल में ब्राह्मण धर्म के देवता ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश के साथ दस महाविद्या आदिशक्ति और उपरोक्त लोक देवी-देवता एवं तांत्रिक योगिनी की पूजा होती है।

मूल्यांकन: वर्तमान समय 19वी एवं 20वी में भी मिथिला में अनेक सिद्ध साधक एवं तांत्रिक हुये है। इनमें पं. लक्ष्मी नाथ गोसांई सौराठ के म.म.रज्जै मिश्र मधुबनी के पं. निरसन झा राज पंडित बलदेव मिश्र, तरौनी के म.म. परमेंश्वर झा महा वैयाकरण पं. दीनबंधु झा म.म. बाल कृष्ण मिश्र चनौर के म.म. शचिनाथ झा एवं रायबहादुर भौर के म.म. श्रीकृष्ण सिंह ठाकुर आदि तांत्रिक सिद्ध साधक हुए हैं। मैं व्यक्ति रूप से कछुवी निवासी स्व. बच्चन पासवान तथा इनके गुरू स्व. पं. जगदीश झा के जानती हूँ बहुत ही बडे तांत्रिक सिद्ध हुए है। श्री बच्चन पासवान का शिष्य सर्वसीमा निवासी सियाशरन राय अघोर पंथी तांत्रिक सिद्ध था। सिद्ध साधक सर्वसीमा निवासी स्व. अनुप मंडल (मैनजन) एवं जया झा (सर्वसीमा) सांप का मंत्र और डाकन देने में सिद्धहस्त तांत्रिक थे।

कुछ पल इतिहास के पन्नों में झांकने पर प्रतीत होता है कि किसी भी समाज अथवा राष्ट्र की प्राचीन संस्कृति को अक्षुण्ण एवं जीवन्त बनाये रखने में सांस्कृतिक चेतना पीढ़ी-दर-पीढ़ी परिमार्जित और परिनिष्ठित होती है, जिसके फलस्वरूप समाज में संस्कृति का विकसित स्वरूप उभरता है। यह स्वरूप चाहे आध्यात्मिक भावनाओं पर केन्द्रित हो अथवा उपभोक्तावादी समाज में या फिर संसाधनों पर आत्मकेन्द्रित क्यों न हो। संस्कृति के इस स्वरूप को अंगीकृत कर कोई भी समाज अपने देश की सांस्कृतिक विकास यात्रा में योगदान देता है। प्रत्येक संस्कृति की अपनी एक सांस्कृतिक विरासत तथा उसकी विशिष्टता होती हैं। वैदिक काल से लेकर वर्तमान काल तक मिथिला अपनी एक विशिष्टता को संजोये हुए है।

संदर्भ ग्रंथ:

[1] हजारी प्रसाद दिवेदी- नाथ संप्रदाय
[2] उमा रमण झा- दश महाविद्या
[3] ब्रज किशोर वर्मा मणि पद्म - लोरिक लोक गाथा
[4] प्रफुल्ल कुमार सिंह मौन - लोक देवी -देवता
[5] डॉ महेंद्र नारायण राम - कारिख पजियार, राजा सलहेस